नागार्जुन के उपन्यासों में मार्क्सवादी दृष्टि

डॉ० रामयज्ञ मौर्य
एसोसिएट प्रोफेसर
हिंदी विभाग, मेरठ कॉलेज, मेरठ

सारांश

नागार्जुन एक जनवादी कवि और कथाकार हैं। विदित है कि आधुनिक भारतीय प्रगतिशील साहित्य का प्रादुर्भाव मार्क्सवादी विचारधारा के वैज्ञानिक और मानवतावादी दृष्टिकोण के प्रभाव से हुआ। नागार्जुन बिहार के मिथिलांचल जैसे क्षेत्र से हैं जहाँ उस समय सामाजिक और वर्गीय वैषम्य चरम पर था और वे सभी सामाजिक रूपों और स्तरों की गहरी जानकारी रखते थे। संवेदनशील और लोकोन्मुखी प्रवृत्ति के कारण गरीब, असहाय, मज़दूर वर्ग तथा शोषितों के प्रति उनकी पूरी सहानुभूति रहती थी। उनका यह मार्क्सवादी दृष्टिकोण उनके अधिकांश उपन्यासों में परिलक्षित होता है। इनके साहित्य के विश्लेषण से एक बात तो स्पष्ट हो जाती है कि मार्क्सवाद में इनकी गहरी आस्था थी और निम्न एवं सर्वहारा वर्ग में अपने उचित हितों, अधिकारों के प्रति चेतना के प्रसार का स्पष्ट उद्देश्य था। **'बलचनमा'** उपन्यास में बलचनमा के माध्यम से सर्वहारा वर्ग को अपने हक के लड़ने के लिए प्रेरित करते हैं। **'दुःखमोचन'** उपन्यास में वेतन वृद्धि के लिए औद्योगिक मजदूरों तथा घरों मे काम करने वाली महरियों से हड़ताल करवा देना, उनकी मार्क्सवादी दृष्टि का परिचायक है। बाबा बटेसरनाथ, वरूण के बेटे, कुम्भीपाक, नई पौध आदि उपन्यासों में भी मार्क्सवादी विचारों के सूत्र भरे पड़े हैं। नागार्जुन जानते थे कि वर्ग–विहीन समाज की रचना देश के समुचित विकास के लिए आवश्यक है और यह तभी सम्भव होगा जब शोषित वर्ग एक जुट होकर शोषक वर्ग का प्रबल प्रतिरोध करें। इस प्रकार हम देखते हैं कि नागार्जुन के उपन्यास साहित्य में मार्क्सवादी–समाजवादी जनचेतना की प्रवृत्ति व्याप्त है।

मार्क्सवाद आधुनिक युग की सर्वाधिक चर्चित समाज परिवर्तनकामी विचारधारा है, जिसे सबसे पहले कार्ल मार्क्स ने प्रस्तुत किया। वस्तुतः भौतिक द्वंद्व के कारण वर्ग–संघर्ष ही मार्क्सवादी चिन्तनधारा का मूलाधार है। यह ऐसा चिन्तन दर्शन है जो भौतिक सामाजिक जीवन को अपना उद्देश्य मानता है। यह *"एक प्रकार का नया और वैज्ञानिक मानववाद है जिसे राजनीति और अर्थशास्त्र के क्षेत्र में समाजवाद और साम्यवाद, दर्शन के क्षेत्र में द्वंद्वात्मक वस्तुवाद और समाजशास्त्र का इतिहास के क्षेत्र में ऐतिहासिक वस्तुवाद कहा जाता है।"*[1] मार्क्स का विचार था कि सामाजिक वर्गों से ऐतिहासिक विकास की प्रक्रिया संचालित होती है। ये सामाजिक वर्ग उत्पादन, उत्पादन के साधन और वितरण की परिस्थिति के आधार पर बनते हैं। आर्थिक परिस्थितियाँ वर्ग–वैषम्य को जन्म देती हैं तथा वर्गों में पहाड़ और खाई जैसा अन्तराल ही वर्ग संघर्ष का कारण बनता है। कार्ल मार्क्स ने समूचे समाज को मुख्यतः दो वर्गों में विभाजित माना है, एक शोषक वर्ग दूसरा शोषित वर्ग। शोषक वर्ग सदैव अपने हित साध्य के लिए दूसरे वर्ग के हितों, अधिकारों को दबाकर उनका शोषण करता है। शोषित वर्ग जी तोड़ मेहनत करता है पर उसे उसके परिश्रम का किंचित मात्र फल मिलता है। वह दो जून की रोटी को तरसता है जबकि शोषक वर्ग, शोषित वर्ग गरीब किसान–मजदूरों के परिश्रम से उत्पन्न पूँजी का बड़ा हिस्सा डकार कर ऐशो आराम का जीवन व्यतीत करता है। यह प्रक्रिया सृष्टि के आदि काल से चली आ रही है केवल शोषण–प्रक्रिया का स्वरूप बदलता है। इन अन्तर को समाप्त करना ही मार्क्सवाद का मुख्य उद्देश्य है।

मार्क्सवाद शोषक और शोषित दोनों सामाजिक वर्गों की सत्ता को स्वीकार करते हुए समान दृष्टि से ऐतिहासिक विकास की प्रक्रिया में देखता है। उसका दृष्टिकोण न तो एकांगी है न संकीर्ण बल्कि व्यापकता लिए हुए हैं। **डॉ० रामविलास शर्मा** ने भी लिखा है– *"मार्क्सवाद वर्गों की भूमिका को भी ऐतिहासिक विकास के संदर्भ में देखता है। एक समय आदिम समाज–व्यवस्था के मुकाबले में सामंती समाज ने मनुष्य के विकास में काफी परिवर्तन हुए। . . . मार्क्सवाद इन वर्गों की रची हुई संस्कृति को आँख मूँदकर ठुकराता नहीं, न हवा में नयी मानव–संस्कृति की रचना करता है। वर्ग–युक्त समाज में वर्ग–आधार पर जितना भी मनुष्य ने ज्ञान अर्जित किया है, मार्क्सवाद उसका मूल्यांकन करके उसे विकसित करता है।"*[2]

मार्क्सवादी विचारधारा ने सामाजिक, आर्थिक विसंगतियों को दूर करने के प्रयास के साथ संतुलित सामाजिक विकास के लिए नयी समाजवादी, साम्यवादी व्यवस्था की स्थापना का दृष्टिकोण भी विकसित किया। मार्क्स के विचारों को ऐंजेल्स, लेनिन, स्तालिन, माओत्से–तुंग आदि ने विकसित और प्रचलित करने में महत्वपूर्ण योगदान किया। साहित्य के क्षेत्र में मैक्सिम गोर्की, काडवेल, रॉल्फ फॉक्स तथा हॉवर्ड फास्ट आदि साहित्यकारों ने अपने रचनात्मक स्तर पर इस विचारधारा को अपनाया। आधुनिक भारतीय साहित्य पर भी मार्क्सवादी वैचारिक चेतना तथा इससे प्रेरित पाश्चात्य–साहित्य का व्यापक प्रभाव देखने को मिलता है, विशेषकर कथा–साहित्य पर। अनेक विद्वानों का मत है कि हिंदी साहित्य में प्रगतिशीलता का दौर मार्क्सवादी विचारों के प्रभाव के कारण ही आया। सन् 1936 ई० में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना के बाद इस चेतना को व्यापक साहित्यिक विस्तार मिला। बाबा नागार्जुन भी इस प्रभाव से अछूते

नहीं रहे। नागार्जुन को भारतीय समाज के जितने रूपों और स्तरों की जितनी गहरी और यथार्थ जानकारी थी, सम्भवतः उनके समकालीनों में किसी अन्य को नहीं। कहा जा सकता है नागार्जुन सभी प्रगतिशीलों में सबसे अधिक संवेदनशील और लोकोन्मुख रचनाकार रहे हैं। उनके अनेक उपन्यासों में राजनैतिक और वैचारिक क्रान्ति की भावना अनेक पात्रों में परिलक्षित होती है, जिसकी विवेचना समीचीन है।

डॉ० पारसनाथ मिश्र का यह कथन *कि* ***"वर्तमान समाज का वर्गमूलक स्वरूप, सामान्य मानव जीवन की कुण्ठाएँ, आर्थिक वैषम्य, गरीबों का शोषण आदि सामाजिक समस्याओं से उपन्यासकार का मानस लोक निरन्तर प्रभावित होता रहता है।"***[3] *नागार्जुन के उपन्यासों* ***रतिनाथ की चाची (1948), बलचनमा (1952), बाबा बटेसर नाथ (1954), नई पौध (1957), दुःखमोचन (1957), कुम्भीपाक (1960), उग्रतारा (1963), इमरतिया (1968)*** इत्यादि के अध्ययनोपरान्त बिल्कुल सटीक लगता है। ***"नागार्जुन जो अब तक वर्ग संघर्ष के स्वर से क्रान्ति का झंडा मिथिलांचल में गाड़ते आए थे, वही अब कस्बे और शहर में प्रवेश करके समाज में बदलते नैतिक मूल्यों की स्थापना करते हुए नारी को जगाया तथा समाज की सड़ाँध, अत्याचार, वर्ग वैषम्य तथा सामाजिक समस्याओं को सुलझाने का प्रयास किया।"***[4]

नागार्जुन के साहित्य के विश्लेषण से एक बात तो स्पष्ट हो जाती है कि मार्क्सवादी सिद्धान्तों के प्रति इनकी गहरी आस्था थी शायद इसीलिए इन्होंने अपने साहित्य में सर्वहारा वर्ग की चेतना के सम्बन्ध में मार्क्सवाद का उपयुक्त प्रयोग किया है। इस सम्बन्ध में **डॉ० कुँवरपाल सिंह** का कथन उचित प्रतीत होता होता है– ***"नागार्जुन ने अपनी राजनैतिक समझ का सही उपयोग करते हुए सर्वहारा वर्ग में वर्ग चेतना का विकास दिखाया है।"***[5] अपने उपन्यासों में निम्न एवं सर्वहारा वर्ग में राजनीतिक चेतना फैलाने का नागार्जुन का एक स्पष्ट उद्देश्य है। उनका मानना था कि देश का कल्याण एवं समुचित विकास तभी सम्भव है जब वर्ग–विहीन समाज की रचना हो और इसके लिए गरीब वर्ग को एकजुट होकर, एक झण्डे के नीचे संगठित होकर उच्च वर्ग का प्रतिरोध करना आवश्यक है। वे सर्वहारा वर्ग को अपने हक के लिए लड़ने के लिए प्रेरित करते हुए कहते हैं– ***"सच जानो भैया, उस बखत मेरे मन में यह बात बैठ गई कि जैसे अंगरेज बहादुर से सोराज लेने के लिए बाबू–भैया लोग एक हो रहे हैं, हल्ला–गुल्ला, झगड़ा–झंझट मचा रहे हैं, उसी तरह जन–बनिहार, कुली–मजदूर और बहिया–खबास लोगों को अपने हक के लिए बाबू–भैया से लड़ना पड़ेगा।"***[6]

मार्क्सवादी चेतना आने के पश्चात् बहुत से कारखानों में काम कर रहे कर्मचारियों में अपने अधिकारों की प्राप्ति हेतु जागृति आई। इन कर्मचारियों ने संघर्ष करने के लिए हड़ताल करने का रास्ता अपनाया जिसका परिणाम यह हुआ कि इन कर्मचारियों की कुछ माँगें मानी जाने लगीं और कर्मचारियों का हित होने लगा। घरों में काम करने वाली महरियों में भी यह चेतना जागी और यही रास्ता अपनाने लगीं। यथा– ***"तुम्हीं से तो सुना है कई बार कि कारखाने कई–कई महीने बंद रह जाते हैं। पंचों के बीच–बचाव से या माँगे मनवा लेने के बाद ही मजदूर काम पर वापस आते हैं . . . अब यहाँ भी समझ***

लो कि महरियों ने हड़ताल कर दी है, जब तक उनका वेतन नहीं बढ़ेगा, वे काम पर वापस नहीं आएंगी''[7]

नागार्जुन **'बलचनमा'** उपन्यास में किसान संगठन के माध्यम से सामूहिक क्रांति चेतना पर बल देते हैं। जमींदार किसानों की भूमि से वंचित करना चाहते हैं। इसमें उन्हें भ्रष्ट राजनेताओं का साथ भी प्राप्त हो जाता है परन्तु बलचनमा किसानों को संगठित करता है और शस्त्र संघर्ष का रास्ता अपनाता है। जब उसका संघर्ष रंग लाने लगता है और जमींदारों पर उसका प्रभाव पड़ने लगता है तब उसे धमकियाँ मिलने लगती हैं। एक दिन बलचनमा की *''माँ को और सुगनी को बारी–बारी से बुलाकर छोटी मलिकाइन ने काफी डाँटा, आगाह कर दिया कि बचलनामा अपनी हरकतों से बाज नहीं आया तो घर फुँकवा दूँगी . . .*

एक दिन आँसू–भरी आँखें लेकर माँ मेरे नजदीक आके बैठी। शाम को अँधेरा था, मैं पलानी में बैठा हुक्का पी रहा था। पूछा– क्या है मइया?

वह बोली–मलिकाइन तुझ पर बहुत बिगड़ी हुई है, कहा है, संच–मंच नहीं बैठेगा तो घर फुँकवा दूँगी।

घर फुँकवा देंगी– मैं कड़ककर बोला– उनके बाप का घर है? जा, बैठ . . .तू गई थी क्या करने?''[8]

उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट होता है कि संघर्ष के कठिन मार्ग पर कदम रखने में इन निम्न दलित वर्ग को ब्लैकमेल और अत्याचार का सामना करना पड़ता है। यहाँ लेखक का उद्देश्य बलचनमा के माध्यम से दलित सर्वहारा वर्ग में जमींदार सामंतों रूपी शोषकों के प्रति वर्ग संघर्ष की चेतना का संचार करना है। इस उपन्यास में वर्ग संघर्ष चित्रित होना मार्क्सवादी दृष्टिकोण प्रमुख आधार रहा है। इसके अतिरिक्त नागार्जुन के अन्य उपन्यास 'बाबा बटेसरनाथ' तथा 'वरुण के बेटे' में भी मार्क्सवादी चेतना के लक्षण परिलक्षित होते हैं। **यश गुलाटी** के मतानुसार– *''नागार्जुन समझते हैं कि सर्वहारा क्रांति इसी वर्ग के निजी प्रयत्नों से होगी, इनमें नेताओं और बुद्धिजीवियों की भूमिका सहयोगी किस्म की भी हो सकती है।''*[9]

वर्ग संघर्ष के सम्बन्ध में **चन्द्रिका ठाकुर** का कथन सत्य प्रतीत होता है कि– *''प्राचीनकाल से ही समाज में वर्ग–वैषम्य एवं शोषण का क्रम विद्यमान रहा है और आज भी है। समाज में जाति–प्रथा, ऊँच–नीच, धनी–गरीब आदि का भेद–भाव अनादिकाल से रहा है। समाज की इस समस्या का समाधान तभी संभव है जब मनुष्य–मनुष्य, जाति–जाति में समानता होगी।''*[10]

एक सात्यिकार जिस समाज में रहता है, वह उस समाज के क्रियाकलाप से प्रभावित हुए बिना रह ही नहीं सकता। इस सम्बन्ध में **चन्द्रिका ठाकुर** का कथन है– *''कवि अथवा साहित्यकार का समाज के साथ अभिन्न सम्बन्ध रहता है। वह तत्कालीन समाज के प्रभाव को छोड़कर सृष्टि कर ही नहीं सकता।*

कवि की मानसिकता को रूप प्रदान करने में समाज महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। कवि जाने–अनजाने किसी न किसी रूप में समाज से अवश्य प्रभावित रहता है। अतः यह कहना सत्य प्रतीत होता है कि साहित्य समाज का दर्पण होता है। समाज का जब जैसा रूप रहता है, तत्कालीन साहित्य का रूप भी ठीक वैसा ही रहता है।''[11]

नागार्जुन भारतीय समाज विशेषकर मिथिलांचल के समाज की सभी समस्याओं से भली–भाँति परिचित थे। इसी के प्रति जागरूक करने के लिए मार्क्सवादी सिद्धान्तों का व्यावहारिक प्रयोग का चित्रण किया है।

जब तक समाज में समस्यायें व्याप्त रहेंगी तब तक मानव का जीवन बड़ा ही कष्टपूर्ण रहेगा। समाज में आपसी प्रेम, सद्भावना एवं ममत्व की भावना प्रायः समाप्त हो जाती है और एक–दूसरे के प्रति हिंसा की भावना रखने लगते हैं। लोगों पर उनके स्वार्थ हावी होने लगते हैं। ये लोग समाज में अपने से नीचे के लोगों के साथ शोषक का व्यवहार करने लगते हैं। नागार्जुन ने उच्च वर्ग के प्रति निम्न लोगों को जाग्रत करते हुए सामाजिक चेतना फैलाने का प्रयास किया। उनका मानना है कि निम्न वर्ग के लोगों को इन उच्च वर्ग के लोगों से अपना हक प्राप्त करने के लिए संघर्ष करना होगा तभी उन्हें सामाजिक हक प्राप्त हो सकता है। संघर्ष की राह सुझाते हुए नागार्जुन गाँधी जी के मार्ग को अपनाने पर बल देते हैं; क्योंकि उच्च वर्ग समर्थ और सम्पन्न हैं, वे कहते हैं कि– *''गाँधी महात्मा ने यह तरीका निकाला था कि दुश्मन अगर ताकतवर हो तो तुम लाठी से उसका मुकाबला कर नहीं सकते, हाँ उससे बोल–चाल बंद कर दो, उसके किसी काम में मदद न पहुँचाओ। दुश्मन दच्छिन की ओर मुँह करके खड़ा रहे तो तुम पीठ फेरकर अपना मुँह उत्तर कर लो। सहयोग माने साथ देना, साथ जुड़ जाना।''*[12]

इस प्रकार तुम सच्चाई व ईमानदारी से अपने हक के लिए अड़े रहोगे तो एक दिन इन जालिमों का दिल अवश्य पसीजेगा। गाँधी ने यही हथियार तो अंग्रेजों पर प्रयोग किया था। यथा– ''सच्चाई पर रहोगे और अपनी माँग पर अड़े रहोगे तो एक न एक दिन ज़ालिम का भी दिल जरूर पसीजेगा . . . गाँधी महातमा नुकसान किसी का नहीं चाहते, न गरीब का और न अमीर का। वह अँगरेजों से भी कड़ाई का बर्ताव नहीं रखते। उनका कहना है कि एक न एक दिन अँगरेजों की मति फिर जाएगी तब वे अपने–आप यह मुलुक छोड़कर चल देंगे, उनको जास्ती परेशान मत करो!''[13]

नागार्जुन का मत है कि यह संघर्ष हमें आपस का मतभेद भुलाकर और एक होकर करना होगा तभी हमें सामाजिक हकों की प्राप्ति होगी और यह एकता निम्न वर्ग के सभी लोगों में तभी संभव है जब सबको विश्वास हो जाएगा कि सभी को समानता का अधिकार प्राप्त होगा। सभी को सब सुविधा प्राप्त होंगी। कोई किसी का गुलाम नहीं होगा। यथा– *''समूची जनता आपस के भेदभाव भुलाकर उठ खड़ी होगी, तभी अँगरेज भागेगा। समूची जनता कैसे आपस का भेदभाव भूलेगी, कैसे एक होगी? लोगों को जब बिसवास हो जाएगा कि जमींदार–महाजन की फाजिल धन–संपदा उन्हीं में बँट जाएगी, रोजी–रोटी का सवाल हल होगा, बच्चों की पढ़ाई–लिखाई . . . बुढ़ापे की बेफिक्री . . . खान–पान और रहन–सहन का*

ठौर–ठिकाना . . . दवा–दारू, पथ–पानी का इंतजाम . . . यह सब सभी के लिए सुलभ होगा, दरभंगा के महराज हों चाहें पटना के लाट साहब–मुफ्त का खाना किसी को नहीं मिलेगा . . . सब काम करेगा, सब दाम पावेगा . . . लूल–अपंग, बूढ़–बेकार सबकी जिम्मेवारी सरकार को उठानी पड़ेगी, पैसे के बल पर कोई किसी को बँधुआ गुलाम नहीं बना सकेगा–''[14]

नागार्जुन जी बाबा बटेसरनाथ के इस कथन द्वारा चेताते हुए कहते हैं कि– *''घबराने की जरूरत नहीं है। अंत में जीत तो तुम्हारी ही होगी। आज न सही, कल। कल न सही, परसों। मगर एक बात फिर कह दूँ . . . मुझे रंच–मात्र झिझक नही होगी यदि मेरे यहाँ न रहने से रूपउली की जनता को यह जमीन कोई लाभ पहुँचा सकें।''*[15]

गाँवों में अनेक प्रकार की बीमारियों का प्रकोप हो जाता है जिससे लोग इन बीमारियों का शिकार होकर मृत्यु का ग्रास बन जाते हैं। नागार्जुन ने ग्रामीण क्षेत्रों में फैले ऐसे ही रोगों के खिलाफ सामाजिक चेतना के रूप में **'दुःखमोचन'** उपन्यास में प्रस्तुत किया है। उन्होंने दर्शाया है कि इन महामारियों से तभी निबटा जा सकता है जब हम आपसी सहयोग–भावना से काम करें और सरकार भी बिना किसी राजनीतिक स्वार्थ तथा बिना किसी भेदभाव के कार्य करें।

मगर जब ग्राम पंचायतों में सरकार या स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा सहायता दी जाती है तो इसे पाने के लिए गाँवों में गुटबंदी बन जाती हैं; क्योंकि पुराने लोग अपनी जाति का घमंड, दौलत का घमंड, लाठी का घमंड और रूढ़ि–परम्परा आदि को छोड़ने के तैयार नहीं होते। सहायता पाने के लिए ये लोग अपना स्वार्थ साधने लगते हैं। इसी से समाज की उन्नति भी नहीं हो पाती। यथा– ''पंचायत गाँव की गुटबंदी को तोड़ नहीं सकी थी अब तक। चौधरी टाइप के लोग स्वार्थ–साधन की अपनी पुरानी लत छोड़ने को तैयार नहीं थे। जात–पाँत का टंटा, खानदानी घमंड, दौलत की धौंस, अशिक्षा का अंधकार, लाठी की अकड़, नफरत का नशा, रूढि और परम्परा का बोझ–जनता की सामूहिक उन्नति के मार्ग में एक नहीं, अनेक रूकावटें थीं। मुसीबत के दिनों में बाहरवालों से तत्काल सहायता पाना जितना कठिन था, उससे भी कठिन था सहायता में मिली हुई वस्तुओं और रकमों को सही जगहों तक पहुँचाना। स्वार्थी और लालची लोगों के सींग नहीं हुआ करते, न कोई खास किस्म का झंडा–पताका होता है उनका।''[16]

इस प्रकार नागार्जुन के कथा–साहित्य का अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि उनके कथा–साहित्य में मार्क्सवादी, समाजवादी एवं जनचेतना की प्रवृत्ति व्याप्त है। निम्न वर्गों में आर्थिक संघर्ष एक महत्त्वपूर्ण संघर्ष है जिसके लिए प्राचीनकाल से ही अपना हक प्राप्ति हेतु संघर्ष होता रहा है। यह अलग बात है कि निम्न वर्ग की आवाज को आरम्भ में अनसुना कर दिया गया किन्तु आधुनिक युग में निम्न वर्ग ने जब जमींदारी व सामंती प्रथा के विरुद्ध एकजुटता दिखाने का साहस किया तब से उनकी आवाज की अनदेखी न की जा सकी। मार्क्सवादी अभिप्रेरणा के फलस्वरूप विश्व में पूँजीवादी प्रथा के विरुद्ध एक क्रांति की लहर चली परिणामस्वरूप रचनाकार भी अपने साहित्य के माध्यम से साम्यवाद की बातें करने लगे और सामाजिक समता की बात होने लगी जिसका प्रभाव समाज पर भी पड़ा। भारत में भू–दान आन्दोलन में भूमिहीनों को भूमिदान देकर समानता का प्रयास किया गया। नागार्जुन ने भी अपने साहित्य के माध्यम से सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक स्तर पर मार्क्सवादी जनचेतना फैलाने में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है।

सन्दर्भ सूची

1. हिंदी की प्रगतिशील कविता– रणजीत, पृ० 31
2. प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ– रामविलास शर्मा, पृ० 79
3. मार्क्सवाद और उपन्यासकार यशपाल– डॉ० पारसनाथ मिश्र, पृ० 217
4. नागार्जुन का गद्य–साहित्य– डॉ० आशुतोष राय, पृ० 56
5. हिंदी उपन्यासों में सामाजिक चेतना– डॉ० कुँवरपाल सिंह, पृ० 166
6. नागार्जुन रचनावली भाग–4 (सम्पादक–शोभाकान्त) उपन्यास–बलचनमा, पृ० 186
7. नागार्जुन रचनावली भाग–5, वही, पृ० 60
8. नागार्जुन रचनावली भाग–4, वही, पृ० 246
9. प्रतिनिधि हिन्दी उपन्यास (भाग–1)– यश गुलाटी, पृ० 163–164
10. नागार्जुन की कविता में युगबोध– चन्द्रिका ठाकुर, पृ० 147
11. वही, पृ० 146–147
12. नागार्जुन रचनावली भाग–4 (सम्पादक–शोभाकान्त) उपन्यास–बलचनमा, पृ० 187
13. वही, पृ० 226
14. वही, पृ० 226–27
15. वही, उपन्यास–बाबा बटेसरनाथ, पृ० 411
16. नागार्जुन रचनावली भाग–5 (सम्पादक–शोभाकान्त) उपन्यास–दुखमोचन, पृ० 24